पहुंच्या भवजल तीर

लेखक: – डा. पदमचन्द्र जी म. सा.

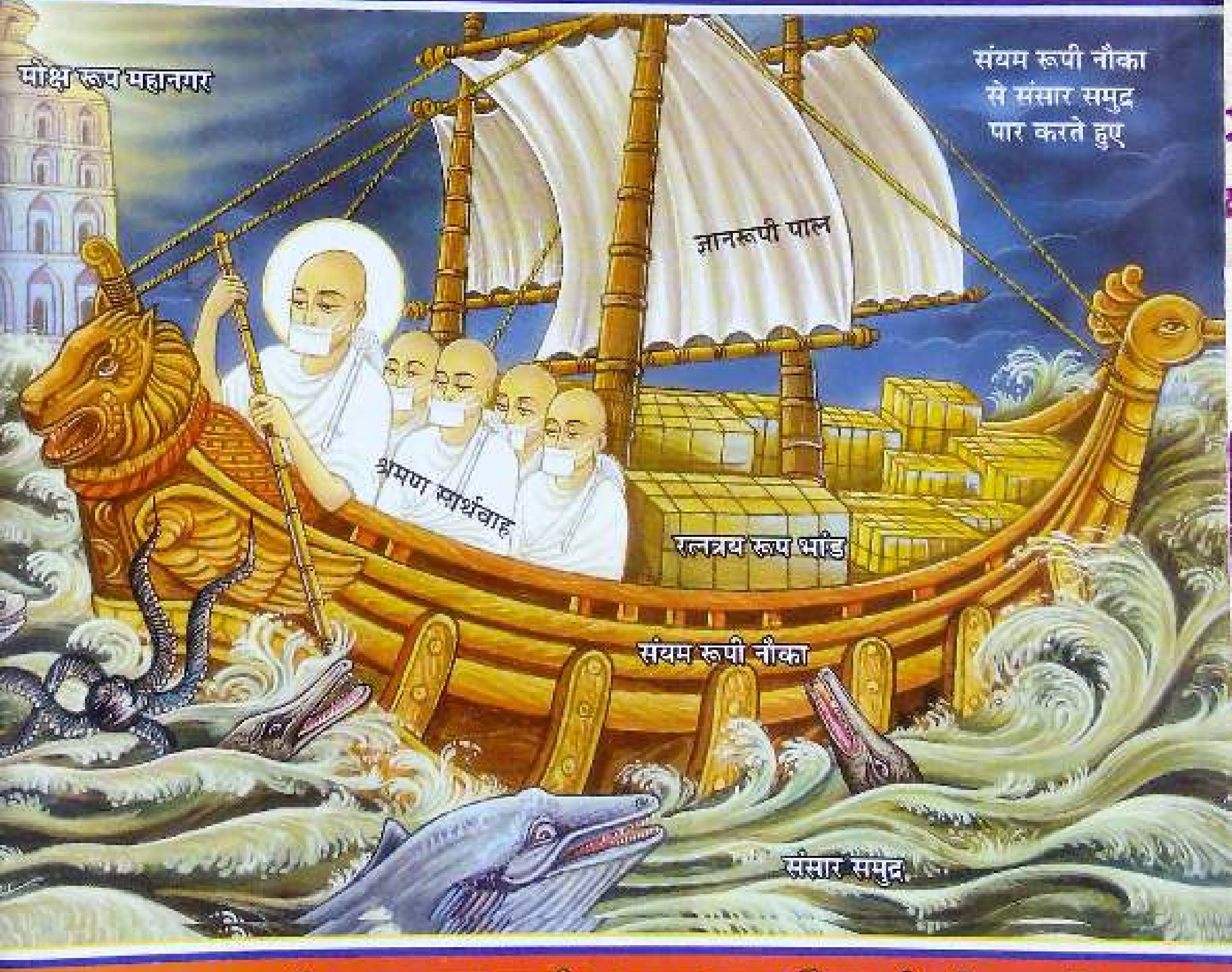

भगवान ऋषभदेव, भगवान महावीर, अमृत पुरुष गौतम के जीवन चरित्र

बड़ी साधु वन्दना सचित्र कथायें भाग १

Scanned by CamScanner

पहुंच्या भवजल तीर

कविकुल शिरोमणि एकभवावतारी आचार्य सम्राट् पूज्य श्री जयमल जी म. सा. की एक कालजयी रचना है, **बड़ी साधु वन्दना**। इस रचना में भक्ति, वैराग्य और संयम की त्रिवेणी का अद्भुत प्रवाह है। जो भी पढ़ता है, उसका हृदय भाव-विभोर होकर वैराग्य पूर्ण भक्ति की हिलोरों से तरंगायमान हो जाता है।

प्रस्तुत रचना में सैकड़ों उदाहरण हैं। जिनमें संयम, तप, तितिक्षा, वीतरागता, निर्मल ध्यान-धारणा आदि की हृदय स्पर्शी प्रेरणाएँ भरी हैं। एक-एक गाथा में उदाहरणों के मोतियों की लड़ी गुंथी हुई है। जिसे पढ़ते-पढ़ते साधक का मन परम शांत रस में निमग्न हो जाता है।

साधु वन्दना के उन उदाहरणों को बालक-वृद्ध, महिला आदि सभी के लिए पठनीय और रुचिकर बनाने की भावना से **विद्वद्मनीषी डॉ. पद्मचन्द्र जी म.** ने बहुत ही आकर्षक शैली में चित्रमय प्रस्तुत कर जन सामान्य पर बहुत उपकार किया है। चित्रकथा माला की इस शृंखला में प्रथम मुक्ता है—''**पहुंच्या भव जल तीर।**''

इसमें आदि तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव, चरम तीर्थंकर भगवान महावीर तथा भगवान महावीर के प्रथम गणधर सर्वलब्धि निधान इन्द्रभूति गौतम स्वामी के रोचक, प्रेरणाप्रद जीवन प्रसंगों का सरल-सुबोध भाषाशैली में रुचिकर, आकर्षक चित्रों सहित प्रस्तुत किया गया है।

महापुरुषों का चरित्र हमारे लिए 'दर्पण' तुल्य होता है। उस चरित्र के निर्मल-स्वच्छ बिम्ब में हम अपनी आत्मा का प्रतिबिम्ब देख सकते हैं। साधना का मार्गदर्शन प्राप्त कर सकते हैं और संयम, शील, तप की प्रबल प्रेरणा भी प्राप्त कर सकते हैं। कौन कितनी प्रेरणा प्राप्त करता है, यह पाठक की पात्रता पर निर्भर है। आशा और विश्वास करता हूँ कि जो भी इन्हें पढेगा, वह समझेगा और जो समझेगा वह इस महापथ पर बढ़ने की प्रेरणा भी अवश्य प्राप्त करेगा।

—उपाध्याय पार्श्वचंद्र मुनि

- **लेखक** : डॉ पदमचन्द्र जी म. सा.
- **सम्पादक** : संजय सुराना
- **चित्रांकन** : सत्यप्रकाश तिवारी
- **प्रथमावृत्ति** : पाँच हजार प्रतियाँ
- **मूल्य** : पच्चीस रूपये मात्र

• *प्रकाशक :* •

श्री जयमल जैन पार्श्व-पद्मोदय फाउण्डेशन, चेन्नई

78, मिल्लर्स रोड, किलपॉक, चेन्नई-600 010

• *डिजाइन एवं प्रिंटिंग :* •

पद्मोदय प्रकाशन

A-7, अवागढ़ हाउस, अंजना सिनेमा के सामने, एम.जी. रोड, आगरा-2 दूरभाष : 09319203291

Scanned by CamScanner

पहुंच्या भवजल तीर

बड़ी साधु वन्दना सचित्र कथाऐं (भाग-1)

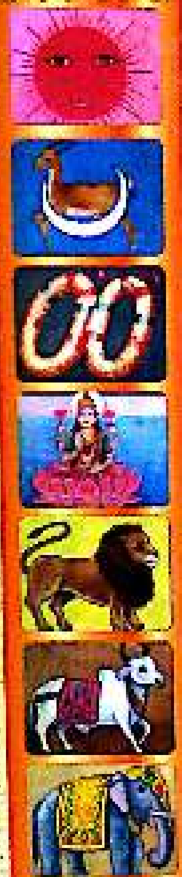

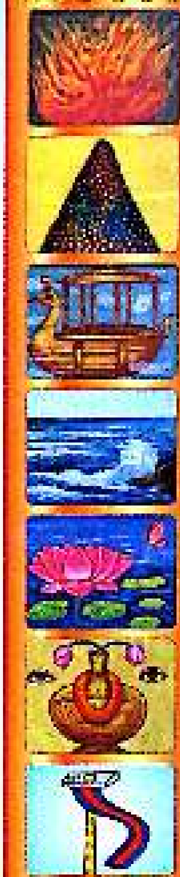

आशीर्वाद प्रदाता

आचार्यप्रवर श्री शुभचन्द्र जी म. सा.

संयम शिरोमणि पण्डित रत्न उपाध्यायप्रवर

श्री पार्श्वचन्द्र जी म. सा.

लेखक

जयगच्छीय दशम पट्टधर आचार्यप्रवर

श्री लालचन्द्र जी म. सा. के सुशिष्य

डॉ. श्री पदमचन्द्र जी म.सा.

प्रकाशक :

श्री जयमल जैन पार्श्व-पद्मोदय फाउण्डेशन ट्रस्ट,

चैन्नई

Scanned by CamScanner

अनुक्रमणिका

भगवान ऋषभदेव

14 दिव्य स्वप्न

भगवान ऋषभदेव

त्याग मार्ग का प्रवर्तन

भगवान ऋषभदेव

केवलज्ञान

भगवान ऋषभदेव

मोक्ष

भगवान महावीर

वीरों में वीर महावीर

भगवान महावीर

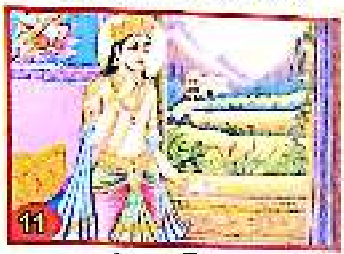

संसार चिंतन

भगवान महावीर

शूलपाणि यक्ष का उपसर्ग

भगवान महावीर

चंण्डकौशिक का उद्धार

भगवान महावीर

चंदनबाला का उद्धार

भगवान महावीर

केवलज्ञान

भगवान महावीर

धर्मतीर्थ की स्थापना

इन्द्रभूति गौतम

बाल्यकाल एवं शिक्षा

इन्द्रभूति गौतम

यज्ञ आयोजन

इन्द्रभूति गौतम

शंका समाधान

इन्द्रभूति गौतम

11 गणधरों की दीक्षा

इन्द्रभूति गौतम

आनन्द श्रावक का अवधिज्ञान

Scanned by CamScanner

भगवान ऋषभदेव

चौदह दिव्य स्वप्न

इस अवसर्पिणी काल के तीसरे आरे में जब कल्पवृक्षों से भोग-उपभोग सामग्री मिलनी कम हो गई तो यौगलिक मनुष्यों में संघर्ष बढ़ गया। उस संघर्ष को मिटाकर अनुशासित व्यवस्था चलाने के लिए कुलकर (राजा) प्रथा प्रारम्भ हुई। इसी व्यवस्था क्रम में सातवें कुलकर थे नाभि राजा। उनकी पत्नी का नाम था—मरुदेवी ! नाभि राजा के समय तक का काल ''युगलिया काल'' कहलाता था।

तीसरा आरा जब समाप्त होने वाला था तब एक शुभ रात्रि में एक महान् पुण्यशाली आत्मा ने नाभि राजा की पत्नी माता मरुदेवी के गर्भ में प्रवेश किया।

उसी रात्रि में माता मरुदेवी ने १४ शुभ स्वप्न देखे। उन्हें ऐसा अनुभव होने लगा कि निर्मल आकाश से उतरकर एक अत्यन्त बलिष्ठ, सुन्दर दूध-सा उज्ज्वल ''वृषभ'' मुख द्वारा उदर में प्रवेश कर रहा है। इसी विलक्षण स्वप्न के साथ माता ने क्रमशः अन्य तेरह स्वप्न भी देखे।

Scanned by CamScanner

प्रातः जब मरुदेवी ने स्वप्न नाभि राजा को सुनाये तो अनुभवी, विद्वान् नाभि राजा ने बताया—''देवी ! लगता है अपने यहाँ कोई अत्यन्त पुण्यशाली विलक्षण आत्मा जन्म लेने वाला है।''

जन्मोत्सव – नामकरण

चैत्र कृष्णा अष्टमी की अर्ध-रात्रि के समय मरुदेवी ने एक युगल सन्तान को जन्म दिया। पुत्र का जन्म होते ही चारों दिशाएँ प्रकाश से जगमगा उठीं।

दूसरे दिन नाभि राजा ने पुत्र का जन्मोत्सव मनाया। बालक का नामकरण किया—''बालक की जंघा पर वृषभ का लांछन (चिन्ह) है तथा माता ने सर्वप्रथम वृषभ का स्वप्न देखा है, इस कारण हम बालक का नाम 'ऋषभकुमार' रखना चाहते हैं।'' बालक के साथ जन्मी कन्या को ''सुमंगला'' नाम से पुकारा गया।

युवा होने पर ऋषभकुमार ने सुनन्दा नाम की एक अन्य युगलिया कन्या के साथ विवाह करके ''विवाह प्रथा'' प्रारम्भ की। फिर नाभि राजा ने सुमंगला के साथ उनका पाणिग्रहण करवाया।

यथा समय सुमंगला के भरत, ब्राह्मी आदि 100 सन्तानें हुईं तथा सुनन्दा ने 'बाहुबली' और 'सुन्दरी' को जन्म दिया। इस प्रकार प्रभु ऋषभदेव के सब मिलाकर 100 पुत्र और दो पुत्रियाँ हुईं।

कृषि आदि का शिक्षण

ऋषभकुमार अत्यन्त प्रतिभाशाली, दूरदर्शी और पुरुषार्थवादी थे। उन्होंने मनुष्यों की रुचि, स्वभाव, शारीरिक गठन आदि का सूक्ष्म निरीक्षण कर उन्हें उनकी योग्यता के अनुसार कार्य सौंपे। सम्पत्ति आदि की रक्षा के लिए कुछ लोगों को असि (युद्धकला) की शिक्षा दी और कुछ लोगों को कृषि उत्पादों की वितरण व्यवस्था सँभालने के लिये मसि (वाणिज्य-व्यापार) की शिक्षा दी। कुछ लोगों को कृषि कर्म अर्थात् खेती की शिक्षा दी। अंक विद्या और अक्षर विद्या के रूप में उन्होंने स्याही लेखनी का उपयोग करना सिखाया। पुरुषों को 72 कला और स्त्रियों को 64 कला आदि प्रकार की विद्याएँ सिखाकर उन्होंने समाज में ज्ञान, कला, मनोरंजन, व्यापार व राज्य-व्यवस्था के मूलभूत सिद्धान्तों का व्यावहारिक प्रशिक्षण दिया।

कुछ समय पश्चात् नाभि राजा ने ऋषभकुमार को राज्य-व्यवस्था सौंप दी। ऋषभकुमार के राज्याभिषेक के समय इन्द्र आदि देव उपस्थित हुये और प्रार्थना की—''हे प्रभु ! हमें आपकी सेवा का अवसर दें।'' ऋषभकुमार की आज्ञा पाकर

Scanned by CamScanner

इन्द्र के देवशिल्पी कुबेर ने राजा ऋषभदेव के लिये राजधानी विनीता नगरी का निर्माण किया जो आगे चलकर अयोध्या नगरी कहलाई।

त्याग-मार्ग का प्रवर्त्तन

बहुत काल तक (६३ लाख पूर्व तक) राज्य सँभालने के बाद ऋषभदेव के मन में सांसारिक वस्तुओं के प्रति सहज ही विरक्ति होने लगी। उन्होंने निश्चय किया—'अब यह सब जिम्मेदारियाँ पुत्रों को सौंपकर मुझे आत्म-साधना करनी चाहिए। भोगों का त्यागकर संयम-साधना करनी चाहिए। क्योंकि जीवन का लक्ष्य भोग नहीं, त्याग है। त्याग से ही मनुष्य को आत्मिक शांति और आनन्द की प्राप्ति हो सकती है।'

ऐसा निश्चय कर ऋषभदेव ने सबसे बड़े पुत्र भरत को अयोध्या का, बाहुबली को तक्षशिला का तथा अन्य पुत्रों को छोटे-बड़े राज्य सौंप दिये। उस समय नव लोकांतिक देवों ने उपस्थित होकर प्रार्थना की—"हे दिव्य पुरुष ! संसार को त्याग-मार्ग दिखाने और धर्म प्रवर्त्तन के इस संकल्प की हम अनुमोदना करते हैं।"

Scanned by CamScanner

एक वर्ष तक प्रजा को मुक्त हस्त से दान (वर्षीदान) देकर ऋषभदेव ने चैत्र कृष्णा अष्टमी के शुभ दिन अशोक वृक्ष के नीचे अपने हाथों से चार मुष्टि केश लुंचन किया। पाँचवीं मुष्टि लुंचन कर रहे थे कि हवा से लहराते केश सुंदर प्रतीत होने लगे तो इन्द्र ने कहा—"प्रभो यह केश राशि रहने दीजिये।" सौधर्मपति इन्द्र के निवेदन पर उन्होंने अपने मस्तक पर एक शिखा (चोटी) रहने दी। प्रभु के केशों को दिव्य वस्त्र में ग्रहण कर इन्द्र ने उन्हें क्षीर समुद्र में प्रवाहित कर दिया। चार हजार अन्य व्यक्तियों ने भी ऋषभदेव के साथ जैन भागवती दीक्षा ग्रहण की।

भिक्षा में इक्षु–रस दान

आदि प्रभु ऋषभदेव को दीक्षा लिये एक वर्ष पूरा हो चुका था। परन्तु तत्कालीन समाज में साधु आचार-मर्यादा की अज्ञानता के कारण उन्हें कहीं भी निर्दोष भिक्षा नहीं मिली। इस कारण वे १३ मास १० दिन तक निर्जल निराहार तप करते हुये विचरण करते रहे।

एक दिन वे हस्तिनापुर नगरी पधारे। वहाँ बाहुबली के पौत्र एवं राजा सोमप्रभ के पुत्र श्रेयांसकुमार ने उस रात एक विचित्र स्वप्न देखा—'वह कान्तिविहीन हुए मेरु पर्वत को दुग्ध कलश से अभिषेक कर उज्ज्वल बना रहा है।'[1] प्रातःकाल वह महल के झरोखे में बैठा अपने स्वप्न पर विचार कर रहा था तभी वहाँ से गुजरते प्रभु ऋषभदेव को देखकर उसे जातिस्मरण ज्ञान हो गया—"ओह, यह तो मेरे प्रपितामह प्रभु ऋषभदेव हैं। इन्हें एक वर्ष से शुद्ध भिक्षा नहीं मिली है। कितने कृषकाय हो गये हैं यह।"

श्रेयांसकुमार तुरन्त महलों से उतर नीचे आया और प्रभु से प्रार्थना की—"हे देव ! कृपया मेरे हाथ से शुद्ध निर्दोष इक्षु-रस ग्रहण कर मेरा कल्याण कीजिए।" श्रेयांसकुमार की भक्ति-भावना स्वीकारते हुये प्रभु ऋषभदेव महल के प्रांगण में पधारे और दोनों हाथों की अंजलि बनाकर १०८ कलश इक्षु-रस ग्रहण किया।

यह पावन दिन था वैशाख शुक्ला तृतीया का। इस पवित्र दिन को आज भी अक्षय तृतीया के रूप में मनाया जाता है। हजारों श्रद्धालु वर्षीतप का पारणा इस दिन करते हैं।

केवलज्ञान और मोक्ष

निरन्तर एक हजार वर्ष तक कठोर मौनयुक्त तप करते-करते एक दिन विनीता नगरी के शकटमुख उद्यान में वट-वृक्ष के नीचे भगवान ऋषभदेव शुक्लध्यान में

१. सुबुद्धि श्रेष्ठि ने स्वप्न में श्रेयांसकुमार को सूर्य की हजार किरणों को स्थिर करते देखा तथा महाराज सोमप्रभ ने स्वप्न में श्रेयांसकुमार को वीर योद्धा की सहायता करते देखा।

Scanned by CamScanner

लीन थे। वे शुक्लध्यान में तल्लीन होकर भावों की अत्यन्त निर्मल उच्च श्रेणी पर चढ़ने लगे। सूक्ष्म ज्ञान की गहनता के कारण चार घाती कर्मों का क्षय हुआ और उन्होंने अत्यन्त निर्मल परम पवित्र केवलज्ञान, केवलदर्शन प्राप्त किया।

जिस समय भगवान को केवलज्ञान प्राप्त हुआ उस समय समूचे लोक में क्षणभर के लिए दिव्य आलोक-सा फैल गया। असंख्य देव और अगणित मानव-समूह भगवान की वन्दना करने आने लगे। चक्रवर्ती भरत को सूचना मिलते ही वे भी माता मरुदेवी के साथ भगवान ऋषभदेव का कैवल्य महोत्सव मनाने आये।

माता मरुदेवी हाथी पर बैठकर जब शकटमुख उद्यान में पहुँचीं तो उन्होंने दूर से ही देवताओं द्वारा रचित दिव्य समवसरण में भगवान को विराजमान देखा। उनके दिव्य मनोहारी स्वरूप देखते-देखते माता मरुदेवी भाव-विभोर हो गयीं। उच्च निर्मल भाव धारा में बहते हुए माता मरुदेवी ने भी केवलज्ञान प्राप्त कर लिया और जब तक केवलज्ञान की उद्घोषणा होती मरुदेवी शरीर त्यागकर मोक्ष/निर्वाण को प्राप्त हो गईं। भगवान ऋषभदेव ने उद्घोषणा की–**"मरुदेवा भगवइ सिद्धा !"** मरुदेवी सिद्ध हो गईं।

Scanned by CamScanner

भगवान महावीर

वैशाली गणतन्त्र के प्रमुख महाराज चेटक की बहिन रानी त्रिशला का विवाह क्षत्रियकुण्ड के राजा सिद्धार्थ के साथ हुआ था। महाराज चेटक भगवान पार्श्वनाथ के भक्त थे। राजा सिद्धार्थ भी तेवीसवें तीर्थंकर भगवान पार्श्वनाथ के परम भक्त थे।

एक रात्रि महारानी त्रिशला ने चौदह दिव्य स्वप्न देखे। स्वप्न देखकर माता प्रफुल्लित होकर जाग उठीं और शय्या से उतरकर भद्रासन पर बैठकर स्वप्नों पर विचार करने लगीं। फिर धर्म-चिन्तन करते हुये रात्रि का शेष समय बिताया। प्रातः महाराज सिद्धार्थ ने स्वप्न-पाठकों को बुलवाया। उन्होंने स्वप्न-फल बताया— ''महाराज ! इस प्रकार के चौदह शुभ स्वप्न किसी तीर्थंकर या चक्रवर्ती की माता ही देखती है। आने वाला बालक कोई तीर्थंकर या चक्रवर्ती सम्राट् होगा।''

राजा सिद्धार्थ ने स्वप्नफलकर्त्ताओं को उचित इनाम आदि देकर विदा किया।

चैत्र सुदि तेरस के दिन उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र का योग होते ही मध्य रात्रि के समय रानी त्रिशला का महल कपूर चन्दन की सुगन्ध से महकने लगा। आकाश से फूल बरसने लगे। माता त्रिशला ने एक दिव्य शिशु को जन्म दिया। चारों ओर प्रकाश छा गया। ५६ दिक्कुमारियों ने मिलकर माता का सूतिका कर्म किया। देवताओं के समूह चौबीसवें तीर्थंकर का जन्मोत्सव मनाने क्षत्रियकुण्ड नगर की ओर चल पड़े।

सौधर्मेन्द्र आदि चौंसठ इन्द्र बालक का जन्म-अभिषेक करने मेरु पर्वत पर ले गये। जलाभिषेक करने के पश्चात् बालक को माता के पास लाकर सुला दिया।

कुछ समय पश्चात् महाराज सिद्धार्थ ने पुत्र का नामकरण उत्सव मनाया। उन्होंने घोषणा की—''जब से बालक देवी त्रिशला के गर्भ में आया है, परिवार में धन-सम्पत्ति, ऋद्धि-सिद्धि, आरोग्य कीर्ति में निरन्तर वृद्धि होने लगी है। इसलिये बालक का नाम वर्धमान (वृद्धि करने वाला) रखा जाये।'' सभी ने नाम सुनकर हर्षपूर्वक अनुमोदन किया।

वीरों में वीर महावीर

बालक वर्धमान बचपन से ही अद्भुत् पराक्रमी एवं विलक्षण बुद्धि के धनी थे। वर्धमान के बड़े भाई का नाम था नन्दीवर्धन। वर्धमान की एक बहिन भी थी सुदर्शना। जिसका पुत्र जमालि राजकुमार आगे चलकर भगवान का शिष्य बना।

Scanned by CamScanner

अपूर्व साहस के धनी बालक वर्धमान जब आठ वर्ष के थे, एक दिन वे ज्ञातखण्ड उद्यान में वृक्षों के नीचे अपने हमउम्र बालकों के साथ खेल रहे थे। तभी पेड़ के तने से लिपटा एक भंयकर काला नाग फुफकारता हुआ सामने आया। बच्चे सहमकर भागने लगे। वर्धमान ने कहा—''रुको ! डरते क्यों हो ? जब हम उसे कोई हानि नहीं पहुँचा रहे तो वह हमें क्यों डसेगा।'' और इतना कहकर उन्होंने नाग को धीरे से पकड़ा और मैदान के दूसरी ओर ले जाकर छोड़ दिया। बच्चे ताली पीट-पीटकर प्रसन्न होने लगे। तभी एक बालक सामने आया और बोला—''वर्धमान ! मेरी पीठ पर बैठो, मैं तुम्हें कितनी अच्छी सवारी कराता हूँ।''

बालक वर्धमान उसकी पीठ पर बैठ गये। वह बालक तेजी से दौड़ने लगा और दौड़ते-दौड़ते विकराल राक्षस का रूप बनाकर हवा में उड़ने लगा। वर्धमान ने ललकारा—''रुक जाओ !'' परन्तु जब वह नहीं रुका तो वर्धमान ने उसके कन्धे पर कसकर एक मुक्का मारा। मायावी दर्द से कराहने लगा और वापस पृथ्वी पर उतरकर वर्धमान के पैरों में गिरकर क्षमा माँगने लगा। तब तक बच्चे गाँव वालों को भी बुला लाये। दैत्य को वर्धमान के चरणों में झुका देखकर गाँव वाले जय

Scanned by CamScanner

जयकार करने लगे–"यह बालक तो वीरों का वीर महावीर है, इसे कोई नहीं जीत सकता।" उस दिन से वर्धमान का नाम महावीर पड़ गया।

संसार–चिंतन

वर्धमान का अन्तःकरण अपार ऐश्वर्य रूपी सरोवर में जल पर स्थित कमल की भाँति सांसारिक भावनाओं से अलिप्त और संयम की शुचिता से पूर्ण पवित्र था। कभी-कभी महल में एकाकी बैठकर वर्धमान घण्टों चिन्तन किया करते–'संसार में लोग एक-दूसरे को पीड़ा पहुँचाते हैं। दासों-पशुओं को बैंतों से पीटा जाता है, शूद्रों के साथ भेदभाव किया जाता है। इन्हें कैसे समझायें कि मनुष्य, पशु-पक्षी सभी के अन्दर जीव एक समान ही है। किसी को पीड़ा न दें, सभी से क्षमा–मैत्रीभाव रखना चाहिए।'

वर्धमान का चिन्तन कभी-कभी गम्भीर रूप ले लेता तो एकाकी उदासीन जैसे लगते।

Scanned by CamScanner

यह देखकर माता-पिता ने सोचा–'अभी तो इसके खेलने-खाने की अवस्था है। यह दिन-रात एकाकी उदास बैठा रहता है, क्यों न इसका विवाह कर दिया जाये।'

वर्धमान को संसार में कोई आसक्ति नहीं थी। उन्होंने माता-पिता को स्पष्ट रूप से समझा दिया। परन्तु माता-पिता के अत्यन्त आग्रह पर उन्होंने सामन्त समरवीर की पुत्री राजकुमारी यशोदा से विवाह कर लिया। कुछ काल पश्चात् राजकुमारी यशोदा ने एक पुत्री को जन्म दिया। पुत्री भी माता की तरह शांत और निर्दोष मन वाली थी। नाम रखा प्रियदर्शना।

जब वर्धमान २८ वर्ष के हुये तो उनके माता-पिता का स्वर्गवास हो गया।

उन्होंने चिन्तन किया–'मैं माता-पिता को दुःख न हो इसलिये अब तक घर में रुका था। अब मुझे सांसारिक बंधन त्यागकर दीक्षा ले लेनी चाहिए।'

कुमार वर्धमान जब अपने बड़े भाई नन्दीवर्धन से आज्ञा लेने पहुँचे तो नन्दीवर्धन बहुत उदास और दुःखी हो गये। बोले–''भाई ! अभी तो माता-पिता के शोक से ही मैं नहीं उबरा। अब तुम भी मुझे छोड़कर चले जाओगे तो मैं किसके सहारे जीऊँगा।''

भाई की पीड़ा देखकर

वर्धमान ने दो वर्ष तक और रुकने का निश्चय किया। इन दो वर्षों तक वर्धमान तप-त्यागमय जीवन बिताते रहे। दीक्षा लेने से एक वर्ष पूर्व वर्धमान ने तीर्थंकरों के जीतकल्प के अनुसार वर्षीदान देना प्रारम्भ किया। एक वर्ष तक वे निरन्तर वर्षीदान करते रहे।

दीक्षा

मार्गशीर्ष कृष्णा दशमी के दिन चन्द्रप्रभा नाम की भव्य शिविका में बैठकर वर्धमान ने महाअभिनिष्क्रमण के लिये प्रस्थान किया। हजारों लोग सौधर्मेन्द्र आदि असंख्य देवी-देवता इस विशाल जुलूस का हिस्सा बने। ज्ञातखण्ड उद्यान के बीच में स्थित एक विशाल अशोक वृक्ष के नीचे खड़े होकर वर्धमान ने अपने सभी आभूषणों और वस्त्रों को एक-एक करके उतार दिया और फिर पूर्व दिशा की ओर मुख करके अपने केशों का पंचमुष्ठि लोच किया।

इन्द्र ने एक देवदूष्य वस्त्र उनके कन्धे पर रख दिया। वर्धमान ने हाथ ऊपर उठाया और सिद्ध भगवान को नमस्कार करके बोले—"आज से मैं सभी पापकर्मों, हिंसा, असत्य आदि का त्याग करता हूँ।" और दो दिन के निर्जल उपवास के साथ कठोर व्रत को स्वीकार कर सीधे कँकरीले—पथरीले पथ पर वन की ओर चल दिये। राजकुमार वर्धमान आज से श्रमण महावीर बन गये।

देवदूष्य का दान

श्रमण महावीर एकाकी जंगल में चले जा रहे थे, तभी उनके सामने एक बूढ़ा ब्राह्मण आया और गिड़गिड़ाने लगा—"हे महाश्रमण ! मैं दरिद्र सोमशर्मा हूँ। जब आप वर्षीदान कर रहे थे, उस समय मैं घर पर नहीं था। कृपया अब मुझे कुछ देकर मेरी दरिद्रता दूर कीजिये।" उसको देखकर श्रमण का दिल पसीज गया और अपने कन्धे पर पड़ा देवदूष्य वस्त्र उतारकर आधा फाड़कर उसे दे दिया। सोमशर्मा वस्त्र लेकर नगर में आया और एक रफूगार को दिखाया। रफूगार ने कहा—"इसका आधा भाग भी लेकर आओ तो यह पूरा वस्त्र एक लाख सोनैया में बिक जायेगा। सोमशर्मा ने कई दिन श्रमण महावीर के पीछे घूमकर आधा वस्त्र और प्राप्त कर लिया और एक लाख सोनैया प्राप्त कर अपनी दरिद्रता दूर की।

Scanned by CamScanner

शूलपाणि यक्ष का उपसर्ग

विहार करते-करते श्रमण महावीर अस्तिकग्राम पधारे और रात्रि व्यतीत करने के लिये गाँव से बाहर टूटे-फूटे मन्दिर में जाकर ध्यानस्थ हो गये। रात को मन्दिर में रहने वाले यक्ष ने जब मनुष्य को देखा तो उसे डराने के लिए विभिन्न मायाजाल फैलाने लगा। रातभर उपद्रव करता रहा। परन्तु श्रमण महावीर अपनी साधना में निश्चल खड़े रहे। रात्रि का तीसरा प्रहर बीतते-बीतते यक्ष थककर चूर हो गया। तभी सिद्धार्थ नामक व्यन्तर देव ने प्रकट होकर उसे बताया—''शूलपाणि ! यह तो करुणा सिंधु तीन लोकों के तारणहार प्रभु महावीर हैं। इन्द्र के आराध्य हैं। कोई इनका बाल भी बाँका नहीं कर सकता। तुम यह क्या कर रहे हो ? क्षमा माँगो इनसे।''

शूलपाणि ने यह सुना तो वह श्रमण महावीर के चरणों में गिरकर क्षमा माँगने लगा। उसे अपने कानों में महावीर की आवाज गूँजती हुई महसूस हुई—''शान्त हो जाओ शूलपाणि ! मन में से क्रोध, घृणा का जहर निकाल दो। तभी शान्ति मिलेगी।'' शूलपाणि भगवान के चरणों में बैठकर भक्ति करने लगा। क्षमा ने क्रोध पर विजय पाई।

चण्डकौशिक का उद्धार

एक बार श्रमण महावीर विहार करते-करते घने जंगल से गुजरे। उस जंगल में दृष्टि-विष सर्प रहता था। उसकी जहरीली नजर जिस पर पड़ती वह विषाग्नि से झुलस जाता था। गाँव के लोगों के मना करने पर भी प्रभु महावीर ने उसी जंगल से गुजरने का निश्चय किया और सर्प की बाँबी के पास पहुँचकर साधना में लीन हो गये। सर्प को मनुष्य की गंध आई तो वह फुफकारता हुआ आया और ध्यानस्थ प्रभु महावीर के पैर के अँगूठे में डस लिया। कई बार डसने पर भी क्षमामूर्ति प्रभु महावीर निश्चल खड़े रहे। नाग आश्चर्य में डूबकर देखने लगा—'यह क्या ? जहाँ डंक मारा था, उस अँगूठे से रक्त के स्थान पर श्वेत दूध की धार बह रही है।'

Scanned by CamScanner

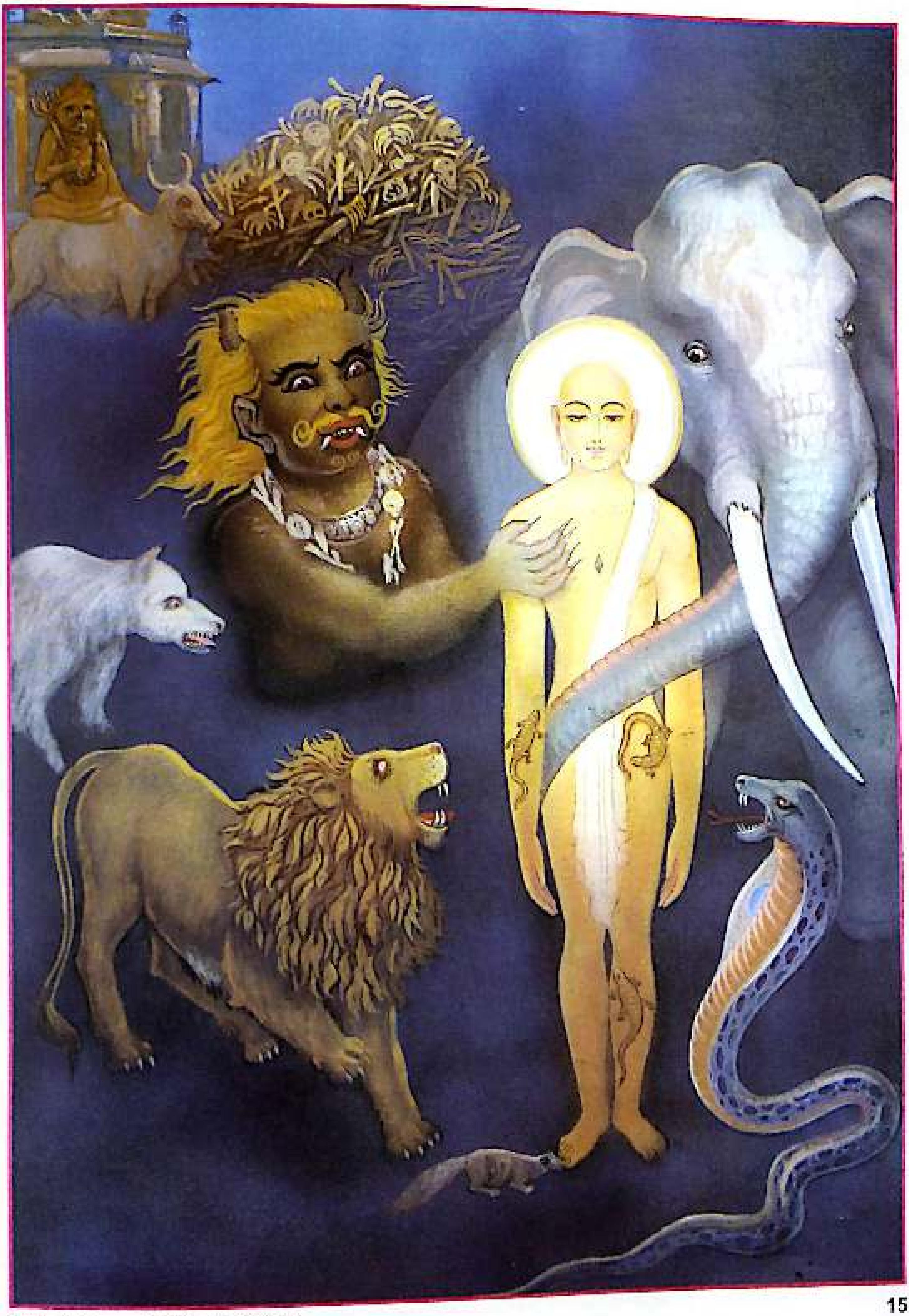

Scanned by CamScanner

सर्प गहरे विचारों में डूब गया–'कौन है यह विलक्षण पुरुष ? मेरे इतनी बार डसने पर भी शान्त खड़ा है।' सोचते-सोचते उसे लगा कोई कह रहा है–''हे चण्डकौशिक ! शान्त हो जाओ। बार-बार क्रोध करके जीवन बर्बाद मत करो। क्रोध को शांत करो।''

सर्प चौंका–'चण्डकौशिक ! यह नाम तो सुना हुआ लगता है।' सोचते-सोचते वह गहरे विचारों में खो गया। चेतना के पट खुले। उसे पूर्व दो जन्मों का जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हो गया। पूर्वभव की सब घटनाएँ स्मरण हो आईं। उसने चिन्तन किया–'इस भंयकर क्रोध के कारण ही मेरी यह दुर्दशा हुई। मैं सर्प योनि में जन्मा। जीवन में कितना दुःख सहा। कितनी बुरी दशा हुई।' उसका हृदय

पश्चात्ताप से भर गया। चण्डकौशिक फन नीचे करके भगवान के चरणों में झुक गया–''हे करुणावतार ! जहर के बदले मुझे ज्ञानरूपी अमृत पिलाकर मेरा उद्धार कर दिया।'' उसने अनशन व्रत स्वीकार कर लिया और बांबी में मुँह डालकर समता पूर्वक देह त्यागी और देवगति प्राप्त हुआ।

प्रभु महावीर ने एक विषधर को क्षमा का अमृत पिलाकर अमृतमय बना दिया।

अपने साधनाकाल में प्रभु महावीर ने अनेक नगरों, गाँवों में विहार किया और हजारों लोगों का उद्धार किया।

उनके साधनाकाल का बारहवाँ वर्ष चल रहा था। वे विहार करते-करते कौशाम्बी पहुँचे और

Scanned by CamScanner

उद्यान में ध्यानलीन हो गये। उन दिनों कौशाम्बी पर राजा शतानीक का राज्य था। राजा शतानीक ने चम्पा नगरी पर अचानक आक्रमण कर दिया। सैनिकों ने चम्पा में लूटपाट की। एक रथ सैनिक रानी धारिणी और राजकुमारी वसुमति को पकड़कर ले गया। रानी धारिणी ने शील रक्षा के लिये आत्महत्या कर ली। सैनिक ने वसुमति को दास बाजार में ले जाकर बेच दिया। बिकते-बिकते वसुमति को कौशाम्बी के एक धर्मप्रिय सेठ धनावह ने खरीदकर अपने यहाँ पुत्री के रूप में रख लिया, परन्तु उसकी पत्नी ने ईर्ष्यावश वसुमति के बाल मूँड़कर, बेड़ियाँ पहनाकर तहखाने में डाल दिया। सेठ को जब पता चला तो उसने वसुमति को तहखाने से निकाला और कहा—"बेटी, तू तीन दिन से भूखी बैठी है, ले यह सूखे बाकले खा, मैं तेरी बेड़ियाँ कटवाने के लिये लुहार को बुलाकर लाता हूँ।"

चन्दना का उद्धार

श्रमण महावीर ज्ञानी थे। तत्कालीन समाज में नारी की दुर्दशा देखकर उनके हृदय में करुणा का स्रोत फूट पड़ा। उन्होंने १३ बोलों का कठोर अभिग्रह (संकल्प) किया—'मैं उसी कन्या के हाथ से अन्न ग्रहण करूँगा, जो एक पवित्र जीवन जीने वाली राजकुमारी हो। फिर दासी के रूप में बाजार में बिकी हो। हाथों में हथकड़ी, पैरों में बेड़ियाँ हों। उसका मस्तक मुँड़ा हुआ हो। मध्यान्ह के समय आँखों में आँसू लिये तीन दिन की भूखी-प्यासी बैठी हो। उसका एक पैर घर की देहली के भीतर और एक बाहर हो। हाथ में सूप हो, सूप में एक कोने में उड़द के सूखे बाकले रखे हों।'

अभिग्रह करके कौशाम्बी नगरी में भिक्षा के लिए प्रतिदिन भ्रमण करते हुए भगवान को पाँच महीने पच्चीस दिन बीत गये। परन्तु उनका अभिग्रह पूर्ण नहीं हुआ। एक दिन भगवान भिक्षा के लिए कौशाम्बी नगरी फिर पधारे। वहाँ तीन दिन की भूखी-प्यासी वसुमति घर की देहली के बीच में बैठी थी। उसके हाथ में सूप था, जिसमें उड़द के सूखे बाकले रखे थे। उसने भगवान महावीर को आते देखा तो उसका रोम-रोम खिल उठा। वह बोली—"धन्य भाग्य है मेरा ! पधारो प्रभु ! जगत् के तारणहार, मेरा उद्धार करो, धन्य है आज की पवित्र घड़ी। मेरे हाथ से यह सूखे बाकले भिक्षा में ग्रहण करिये प्रभु !"

Scanned by CamScanner

परन्तु भगवान बिना भिक्षा लिये वापस लौटने लगे तो वसुमति की आँखों में से आँसुओं की झड़ी बरसने लगी–''प्रभो ! यह क्या ? सब नाते-रिश्तेदारों ने साथ छोड़ा तो छोड़ा........आज आपने भी साथ छोड़ दिया। मेरा भाग्य ही रूठ गया है। घर आती गंगा लौट गई ?''

वसुमति का विलाप सुनकर भगवान महावीर वापस लौट आये। वसुमति ने अत्यन्त भाव-विह्वल होकर उड़द के बाकले भगवान को भिक्षा में दिये।

भगवान के भिक्षा ग्रहण करते ही आकाश में देवता दिव्य घोष करते हुए सोने, हीरे, रत्नों की वर्षा करने लगे।

दिव्य प्रभाव से वसुमति के शरीर पर पहनाई हुई हथकड़ियाँ-बेड़ियाँ हीरे-मोती के आभूषण बन गये। उसके शरीर पर सुन्दर वस्त्र चमकने लगे। पंच दिव्य प्रकट

Scanned by CamScanner

हुए, वस्त्राभूषणों की वर्षा हुई। स्वर्ण-मुद्रा वर्षा से धन्ना सेठ का विशाल आँगन स्वर्ण-मुद्राओं से भर गया। जब मूला ने यह वृत्तान्त सुना तो स्वर्ण-मुद्राओं को लेने के लिये अपने पीहर से भागी चली आयी और जैसे स्वर्ण-मुद्राओं को छुआ, वे आग की तरह दहक उठे, मूला घबरा गयी। यह देख वसुमति ने अपने हाथों से स्वर्ण-मुद्राएँ मूला को दीं तो चन्दन की तरह शीतल थीं। इस घटना के पश्चात् से ही वसुमति का नाम चन्दनबाला घोषित हो गया। भगवान महावीर के अभिग्रह पूर्ण होने की खबर सुनकर राजा शतानीक और रानी मृगावती भी वहाँ पहुँचे और चन्दनबाला को अपने साथ महलों में चलने का आग्रह किया। किन्तु चन्दनबाला नहीं गयी। वह भगवान महावीर के चरणों में दीक्षा लेने के लिए समय की प्रतीक्षा करने लगी।

श्रमण महावीर का चिन्तन था—मन पर संयम करने के लिए आँख, कान, जीभ, हाथ, पैर आदि इन्द्रियों पर भी संयम साधना पड़ता है। भूख-प्यास, सर्दी, गर्मी सहने की शक्ति का विकास करना और दूसरों के दुर्वचन, दूसरों द्वारा दी गई ताड़ना, तर्जना सहकर मन को प्रसन्न और समाधिस्थ करने का अभ्यास करना ही सच्ची साधना है। उन्होंने साढ़े बारह वर्ष तक एकान्त जंगलों में सुनसान स्थानों पर, पर्वतों की गुफाओं और श्मशान में जाकर निर्भय होकर ध्यान किया। वे हर समय अपनी आत्मा में ही रमते रहते। दो दिन से लेकर छह महीने तक निरन्तर बार-बार तप करते। जल भी नहीं पीते। शरीर पर वस्त्र भी नहीं डालते। कभी मिल जाता तो रूखा-सूखा भोजन ग्रहण कर मन को समाधि में लीन रखते। इस साधनाकाल में उन्होंने बीच-बीच में लगभग तीन सौ उनचास दिन (अर्थात् एक वर्ष से भी कम) भोजन किया और बाक़ी साढ़े ग्यारह वर्ष लगभग तप में बिताये। इस प्रकार तप करते हुए बारह वर्ष छह महीने और पन्द्रह दिन पूरे हो गये।

भगवान महावीर विहार करते हुये मध्यम पावापुरी से चलते हुये जम्भक ग्राम के निकट ऋजुबालुका नदी के तट पर पहुँचे और गोदुहासन में शाल के वृक्ष के नीचे गहरी समाधि में लीन हो गये।

Scanned by CamScanner

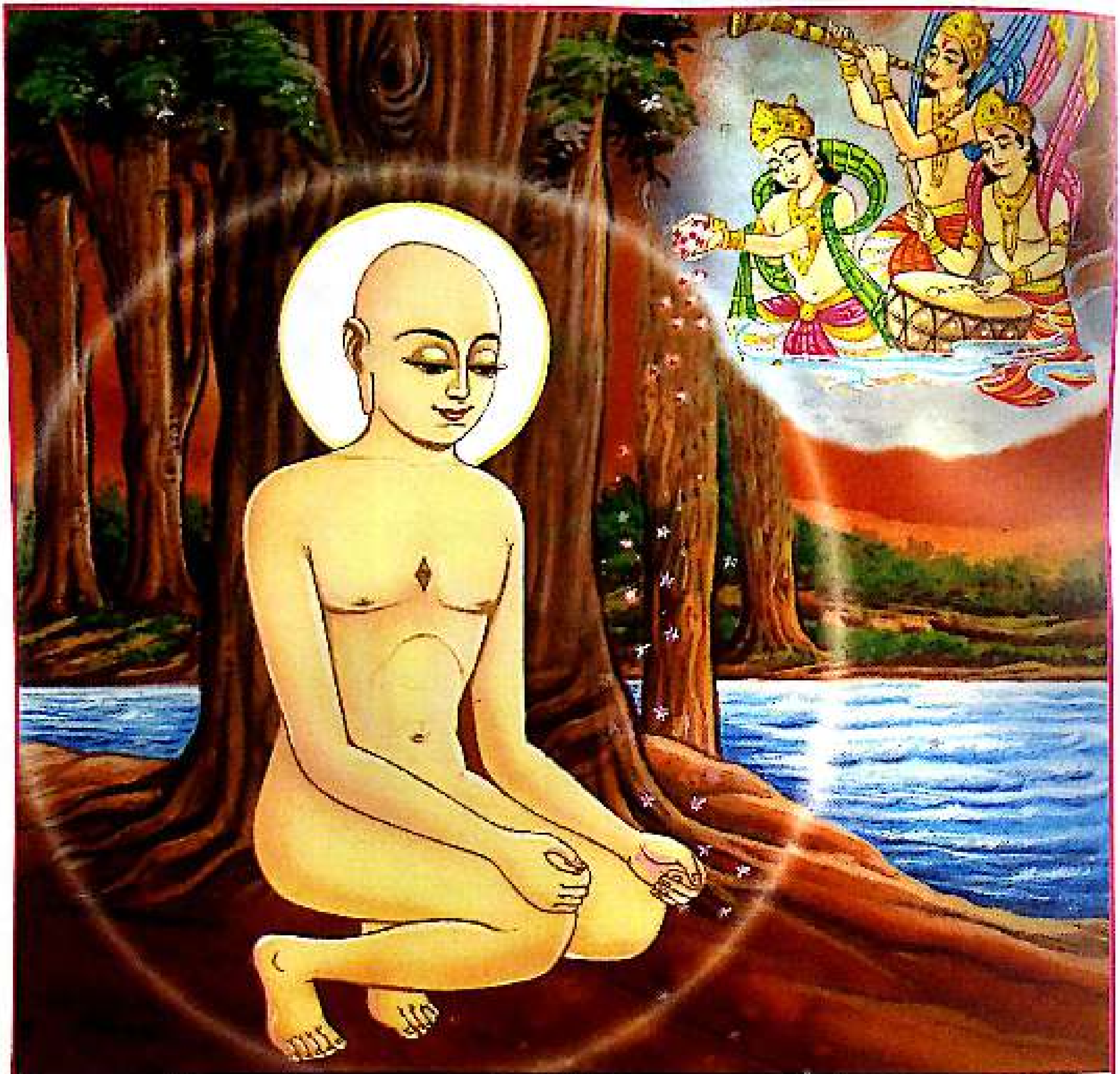

केवलज्ञान

वैशाख शुक्ला दशमी के दिन चन्द्रमा के साथ उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र का योग था। दिन के चौथे प्रहर श्रमण महावीर अत्यन्त निर्मल शुक्लध्यान में मग्न थे। अत्यन्त शुद्ध भावों पर आरोहण करते-करते उनके चार घाती कर्मों का क्षय हुआ और उनके भीतर अनन्त ज्ञान का सूर्य जगमगा उठा। वे सर्वज्ञ केवलज्ञान-केवलदर्शन के धारक बन गये।

उन्हें केवलज्ञान प्राप्त होते ही असंख्य देवी-देवताओं ने स्वर्ग से आकर उनकी वन्दना की एवं कैवल्यज्ञान महोत्सव मनाया। प्रभु महावीर ने देवताओं को धर्म का उपदेश दिया। वहाँ से चलकर भगवान मध्यम पावापुरी पधारे।

Scanned by CamScanner

वहाँ महापंडित गौतम अपने मन की शंका का समाधान पाकर प्रभु के चरणों में दीक्षित हो गये। उनके पीछे-पीछे अन्य दस विद्वान् पंडित भी भगवान के शिष्य बन गये। भगवान महावीर ने गणधर पद की स्थापना कर मुनि गौतम को प्रमुख गणधर बनाया।

धर्मतीर्थ की स्थापना

चन्दनबाला भी भगवान के चरणों में पहुँच गई और दीक्षित हुई। जो पुरुष स्त्री गृहस्थ जीवन में रहकर साधना करना चाहते थे, उन्हें श्रावक-श्राविका धर्म की शिक्षा दी। इस प्रकार साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका रूपी धर्मतीर्थ की स्थापना की। साधुओं के लिए पाँच महाव्रत अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रहरूपी धर्म बताया। गृहस्थों को बारह सरल व्रतों को पालन करने की शिक्षा दी। भगवान महावीर ने अपने उपदेशों को लोकभाषा में दिया। सभी जाति व धर्म के लोग

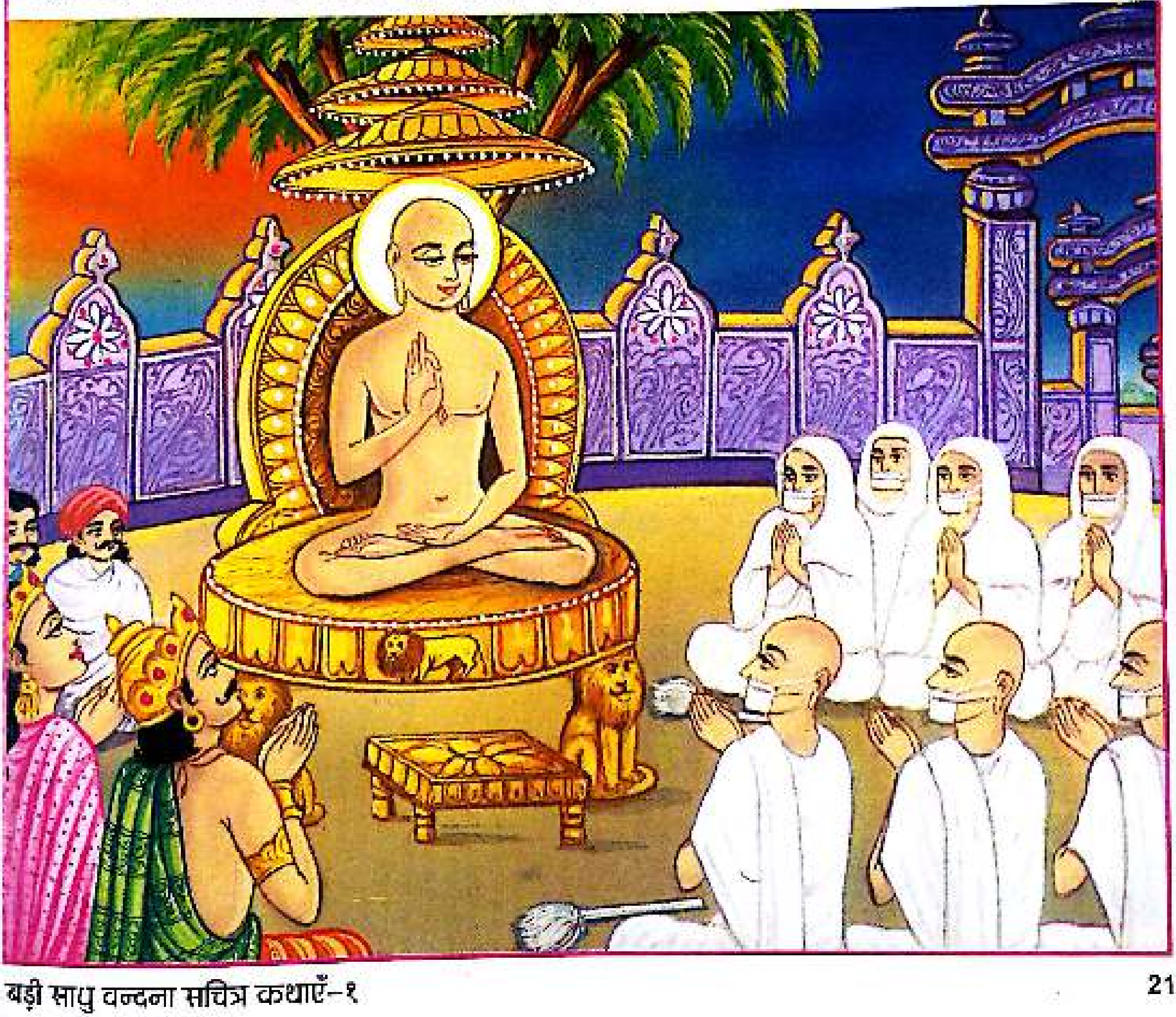

Scanned by CamScanner

उनके उपदेश सुनने आते और सत्य, सदाचार का नियम ग्रहण करते। बड़े-बड़े सम्राट्, श्रेष्ठि उनके बताये मार्ग पर चलने का प्रयत्न करते और उनके परम भक्त बन गये।

भगवान को तीर्थंकर-पद प्राप्त हुये इकतालीस वर्ष बीत चुके थे। बयालीसवें वर्ष में प्रभु महावीर ने पावापुरी के राजा हस्तिपाल की रज्जुक सभा में चातुर्मास किया। उनकी आयु ७२ वर्ष की हो चुकी थी। एक दिन उन्होंने विचार किया—'मैं शीघ्र ही जीवन-मरण के चक्र से मुक्त होने वाला हूँ। मेरा प्रिय शिष्य गौतम मेरे निर्वाण से अत्यधिक दुःखी हो उठेगा। मुझे उसे यहाँ से दूर भेजना चाहिए।' ऐसा विचार कर उन्होंने गौतम गणधर को देवशर्मा ब्राह्मण को धर्मबोध देने पास के गाँव में भेज दिया।

कार्तिक वदी चौदस के दिन भगवान ने अपना अन्तिम उपदेश देना प्रारम्भ किया जो लगातार सोलह प्रहर तक चला। भगवान महावीर के यह अन्तिम उपदेश उत्तराध्ययनसूत्र के ३६ अध्ययनों में और विपाकसूत्र के ५५ अध्ययनों में गुम्फित है। इन उपदेशों को सुनकर अनेक राजा-महाराजाओं और जन-सामान्य ने व्रत नियम ग्रहण किये।

मोक्ष गमन

कार्तिक कृष्णा ३० की अर्द्ध-रात्रि का समय था। भगवान के शरीर से एक अलौकिक ज्योति निकली और लोक के अग्र भाग में जा स्थिर हुई। भगवान महावीर निर्वाण-पद को प्राप्त हुये। भगवान का निर्वाण अमावस की गहन अन्धकार भरी रात्रि को हुआ था। देवताओं ने रत्नों से अंधकार को दूर करने का प्रयत्न किया। उसी दिन से दीपावली पर्व का प्रारम्भ हुआ।

भगवान महावीर के निर्वाण के पश्चात् उनके विशाल धर्मसंघ का सम्पूर्ण उत्तरदायित्व पंचम गणधर आर्य सुधर्मा ने सँभाला। वे भगवान महावीर के प्रथम पट्टधर कहलाये। आर्य सुधर्मा स्वामी के पश्चात् उनके प्रमुख शिष्य आर्य जम्बू स्वामी संघ के नायक बने। आर्य जम्बू स्वामी के निर्वाण के साथ ही भरत क्षेत्र में इस अवसर्पिणी काल में केवलज्ञान परम्परा लुप्त हो गई। □□

Scanned by CamScanner

इन्द्रभूति गौतम

जिन-शासक-नायक, धन्य श्री वीर जिनंद।
गौतमादिक गणधर, बर्तायो आनन्द।।८।।

बाल्यकाल एवं शिक्षा

मगध की राजधानी राजगृह नालन्दा के पास गोब्बर नाम के एक गाँव में ईसा से लगभग ६०७ वर्ष पूर्व गौतम गोत्रीय ब्राह्मण के घर एक सुन्दर बालक ने जन्म लिया। माता पृथ्वी और पिता वसुभूति ने बड़ी प्रसन्नता से उसका नाम इन्द्रभूति रखा। इसके पश्चात् उनके दो पुत्र और हुये, जिनके नाम क्रमशः अग्निभूति और वायुभूति रखा। विद्वान् ब्राह्मण वसुभूति ने बाल्यकाल से ही तीनों भाइयों को वेद की शिक्षा देना प्रारम्भ कर दिया। इन्द्रभूति बचपन से ही मेधावी बुद्धि के थे।

Scanned by CamScanner

एक दिन उनके पिता ने एक मंत्र उच्चारित किया। इन्द्रभूति ने मंत्र सुनकर वापस उच्चारित किया। वसुभूति ने सुना तो सोचने लगे–'कितनी प्रखर बुद्धि है। एक बार में ही इतना शुद्ध उच्चारण। जरूर आगे जाकर महापण्डित बनेगा। इसे शिक्षा के लिए किसी कुशल गुरु के पास भेजना होगा।'

कुछ समय पश्चात् वसुभूति ने तीनों भाइयों को विद्याध्ययन के लिये अपने मित्र के पास गुरुकुल में भेज दिया। इन तीनों भाइयों ने बारह वर्ष तक विद्वान् गुरु की सेवा में रहकर ऋग्, यजु, साम एवं अथर्व चारों वेदों, ६ वेदांगों और ४ उपांगों का गहरा ज्ञान प्राप्त किया। कुशाग्र बुद्धि होने के कारण शीघ्र ही इन्द्रभूति इन १४ विद्याओं के कुशल पारंगत विद्वान् बन गये।

बारह वर्ष पश्चात् तीनों भाई वापस घर आये और अपने गुरुकुल की स्थापना की। कुछ ही समय में तीनों भाइयों की विद्वत्ता की प्रसिद्धि दूर-दूर तक फैलने लगी। सुदूर प्रदेशों से सैकड़ों विद्यार्थी ज्ञान प्राप्त करने आने लगे। धीरे-धीरे छोटा-सा गुरुकुल विशाल विद्या-केन्द्र बन गया। तीनों भाइयों के पास पाँच-पाँच सौ छात्र विद्यार्जन करते थे।

यज्ञ आयोजन

उन्हीं दिनों अपापा नगरी का एक धनी ब्राह्मण सोमिल इन्द्रभूति गौतम के पास आया। बहुत-सा धन, कपड़े आदि उपहार देकर बोला–''विप्रवर ! मैंने एक विशाल यज्ञ का आयोजन किया है। हजारों विद्वान् ब्राह्मणों को आमंत्रित किया है। मैं चाहता हूँ कि इस यज्ञ के प्रमुख आचार्य-पद पर आप शोभित हों।''

इन्द्रभूति–''ठीक है यजमान ! इस आयोजन को अविस्मरणीय बनाया जायेगा।''

इन्द्रभूति गौतम की स्वीकृति पाकर सोमिल उन्हें तथा अग्निभूति व वायुभूति को भी बड़े आदर के साथ अपापा नगरी ले आया। इसके अलावा उसने कई बड़े कर्मकाण्डी आचार्यों को भी आमंत्रित किया। जिनमें प्रमुख आठ आचार्य थे–व्यक्त, सुधर्मा, मण्डित, मौर्यपुत्र, अकंपित, अचलभ्राता, मेतार्य और प्रभास।

विशाल यज्ञ प्रारम्भ हुआ। सभी विद्वान् आचार्य अपने शिष्यों के साथ वहाँ पहुँचे। सैकड़ों लोगों का विशाल जन-समूह यज्ञ-स्थल पर उपस्थित था। प्रमुख आचार्य इन्द्रभूति ने यज्ञ प्रारम्भ किया। मंत्रोच्चारण के साथ घी, ज्वार आदि की आहुतियाँ दी जाने लगीं।

Scanned by CamScanner

उन्हीं दिनों केवलदर्शन, केवलज्ञान प्राप्त कर श्रमण भगवान महावीर मध्यम पावापुरी के उद्यान में पधारे थे। उनके आगमन पर देवताओं ने आकाश से फूल बरसाये, देव-दुंदुभि बजाई। इन्द्रादि देव उनके दर्शन हेतु विमान में बैठकर पावापुरी की ओर आने लगे। जब उनके विमान अपापा नगरी के समीप आये तो उन्हें देखकर इन्द्रभूति गर्व से बोले—''सोमिल ! यह देखो हमारे यज्ञ का प्रभाव। वेद-मंत्रों का उच्चारण सुनकर स्वयं इन्द्र अपना पुरोडाश (यज्ञ में दिया जाने वाला इन्द्र का हिस्सा) लेने यहाँ पधार रहे हैं। ऐसा अलौकिक यज्ञ-प्रभाव पहले इस युग में कभी हुआ है ?'' सोमिल आदि वहाँ उपस्थित सैकड़ो लोग चकित दृष्टि से देव-विमानों को आते देखने लगे। यज्ञ-मण्डप में इन्द्रभूति की जय-जयकार होने लगी।

तभी देव-विमान यज्ञ-मण्डप के ऊपर से होकर सर्र से आगे निकल गये। सोमिल ने आश्चर्य से कहा—''आचार्यवर ! देव-विमान तो यहाँ से आगे निकल

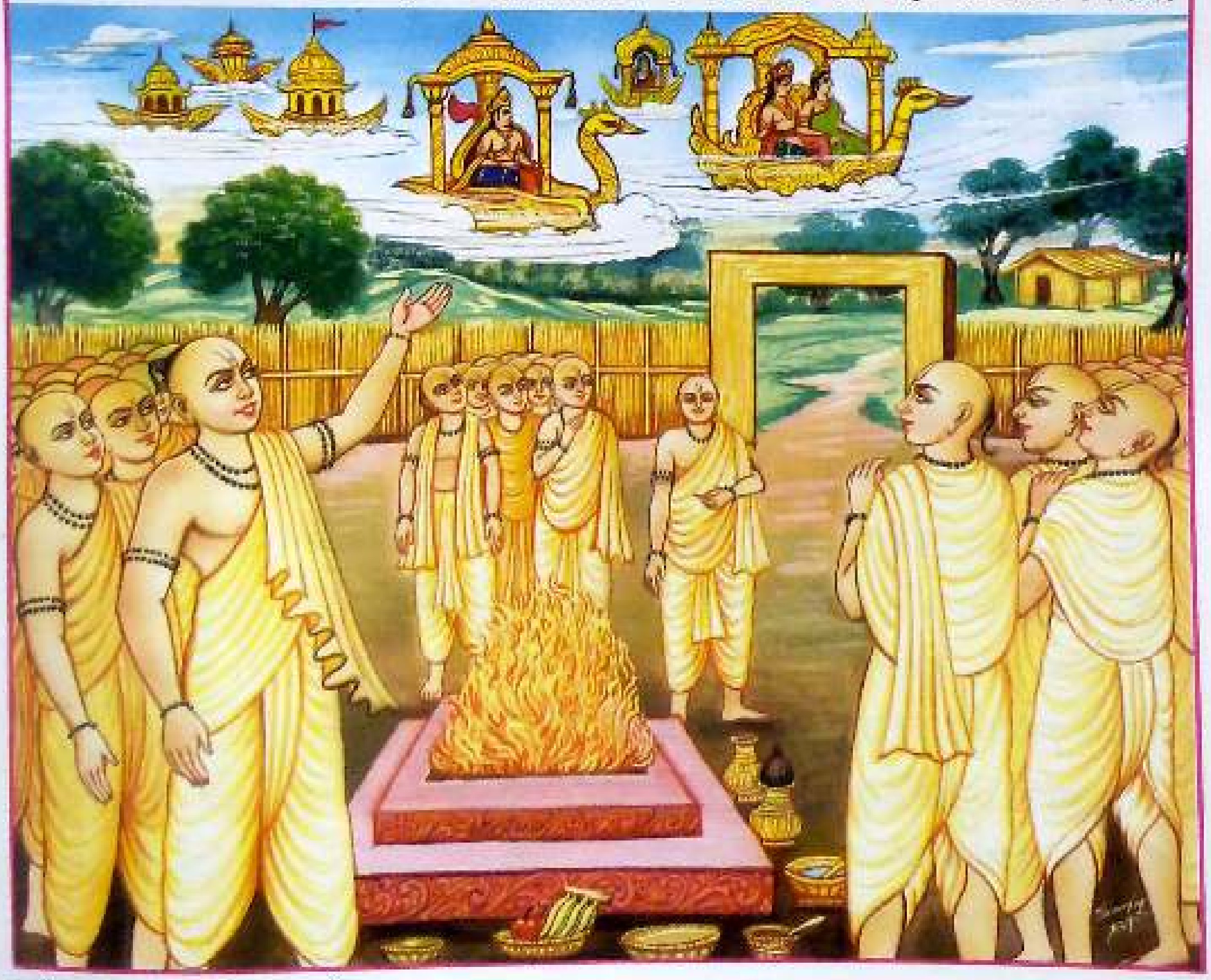

Scanned by CamScanner

गये।" यह देखकर यज्ञ-स्थल पर हर्षोल्लास के बदले अचानक गहरी निस्तब्धता छा गई। लोग कभी इन्द्रभूति को और कभी जाते विमानों को देखने लगे।

सहसा कई स्वर उठे–"अरे देखो ! देव-विमान पास के किसी स्थल पर उतर रहे हैं।" यज्ञ में उपस्थित विशाल जन-समूह देव-विमान उतरने के स्थान की ओर दौड़ पड़ा। कुछ ही क्षणों में भरा-पूरा यज्ञ-स्थल वीरान-सा हो गया। तभी इन्द्रभूति को किसी ने बताया–"विप्रवर ! पावापुरी के उद्यान में केवलज्ञानी श्रमण भगवान महावीर पधार रहे हैं। वहाँ वे प्रवचन देंगे। देवगण वहीं जा रहे हैं। देवों ने वहाँ विशाल प्रवचन सभा (समवसरण) का निर्माण भी किया है।"

इन्द्रभूति का अहंकार

इन्द्रभूति ने आश्चर्य और अहंकार से कहा–"उस क्षत्रियकुमार के प्रवचन सुनने देवगण जा रहे हैं ? वह क्या जाने प्रवचन देना ?"

वह व्यक्ति बोला–"विप्रवर ! उन्हें केवलज्ञान, केवलदर्शन की प्राप्ति हुई है। नगर के सभी बड़े श्रेष्ठि, हजारों नर-नारी भी उनके दर्शन के लिये जा रहे हैं।"

यह सुनकर अग्निभूति ने अपने बड़े भाई से कहा–"आर्य ! यह मायावी श्रमण तो यज्ञ-समारोह को फीका कर देगा। इसका जल्दी कुछ कीजिए।"

इन्द्रभूति क्रोधित होकर बोले–"जिस प्रकार कोई मूढ़ व्यक्ति शेषनाग के मस्तक की मणि को लेने के लिये हाथ बढ़ाकर अपने काल को स्वयं बुलावा देता है, उसी प्रकार इसने अपनी सर्वज्ञता का आडम्बर रचकर मेरे क्रोध को भड़का दिया है। जिस प्रकार कोई मूर्ख व्यक्ति घने जंगल में आग लगाकर उसके मध्य भाग में बैठ जाता है अथवा कोई बुद्धिहीन व्यक्ति सुख-प्राप्ति की अभिलाषा में कंटकलता का आलिंगन करता है, ठीक उसी प्रकार इसने मेरी उपस्थिति में सर्वज्ञता का ढोंग रचकर अपने लिये संकट को निमन्त्रित किया है।"

अहंकार पूर्वक इन्द्रभूति ने अपनी चोटी में गाँठ लगाई और बोले–"अब यह चोटी इस मायावी को हराकर ही खोलूँगा।" फिर इन्द्रभूति अपने ५०० शिष्यों के साथ श्रमण महावीर को परास्त करने समवसरण की ओर चल दिये।

Scanned by CamScanner

शंका समाधान

पावापुरी के महासेन उद्यान के पास पहुँचकर जब इन्द्रभूति ने अष्ट महाप्रतिहार्यों को और श्रमण महावीर के अलौकिक तेजमय रूप को देखा तो निश्चल खड़े रह गये। उन्होंने विचार किया–'ऐसा दिव्य विराट् शोभा-मण्डप ! इतना तेजोमय स्वरूप ! अवश्य ही यह कोई महान् पुरुष हैं। मैं इन्हें नहीं जीत पाऊँगा।' इन्द्रभूति खड़े ही थे तभी उनके कानों में भगवान की वाणी गूँजने लगी–''आओ इन्द्रभूति, तुम्हारा आना श्रेयष्कर है।''

इन्द्रभूति चौंक गये–'आश्चर्य है, मेरा नाम भी जानते हैं।'

वह यह सोच ही रहे थे तभी भगवान की वाणी फिर उनके कानों में पड़ी–''इन्द्रभूति ! वेदों के इतने बड़े विद्वान् ज्ञाता होकर भी तुम जीवात्मा के अस्तित्व के विषय में सन्देह रखते हो। वेद-वाक्यों के गूढ़ अर्थ को अच्छी तरह नहीं समझने के कारण तुम्हारे मन में यह सन्देह उत्पन्न हुआ है। आज मैं तुम्हें इन वेद की ऋचाओं का सही अर्थ समझाता हूँ।''

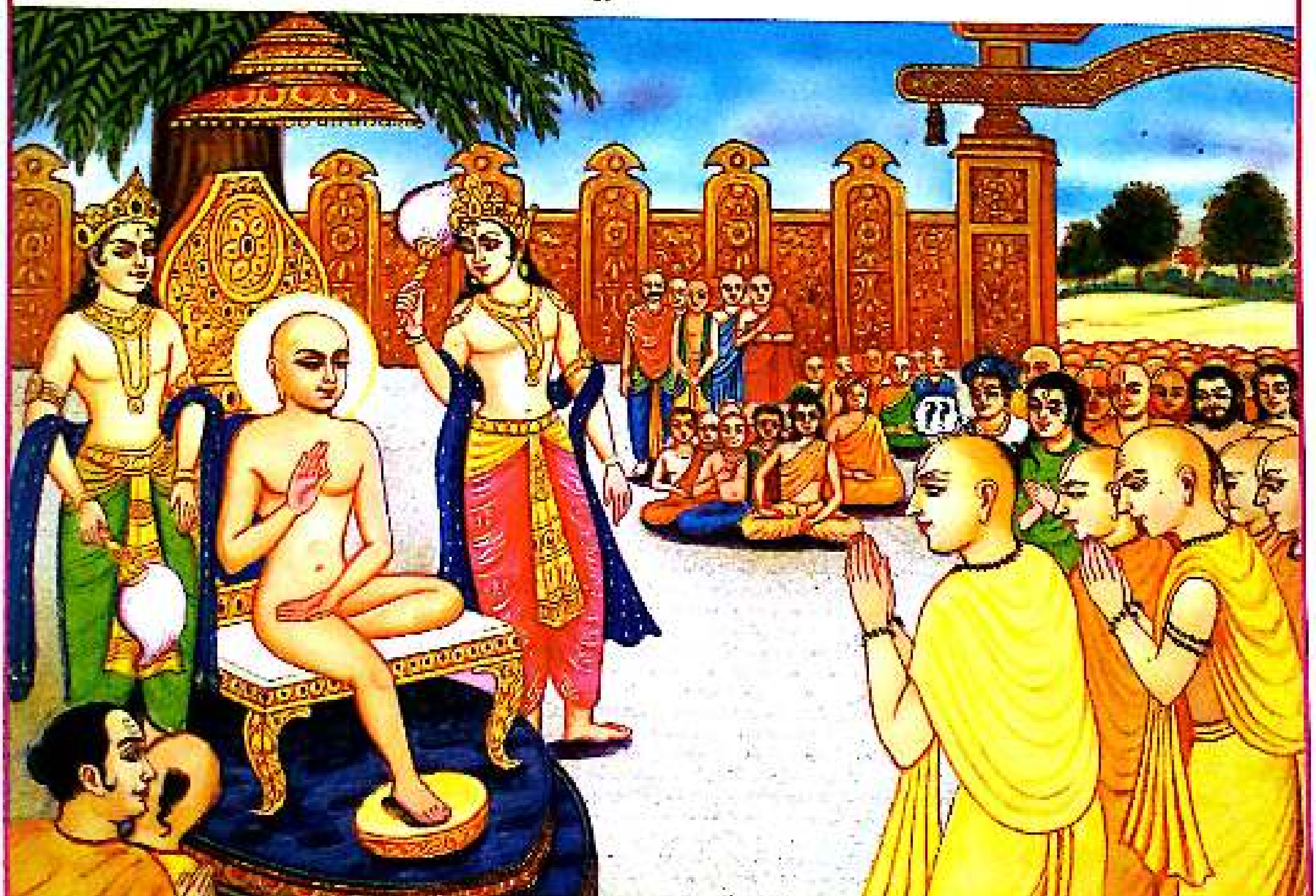

Scanned by CamScanner

इन्द्रभूति आश्चर्यचकित होकर सोचने लगे–'मैंने तो आज तक अपने मन का यह सन्देह किसी के पास प्रकट नहीं किया फिर इन्हें कैसे पता चल गया। वास्तव में ये तो सर्वज्ञ हैं।'

भगवान ने फिर कहा–''तुम्हारे अन्तर् में जीव के अस्तित्ववान-विषयक शंका जिसको हुई है, वही वस्तुतः जीव है। वेदों में जिसे 'विज्ञानघन' कहा है, वही आत्मा है। संशय और ज्ञान करने वाला कौन है, शरीर या आत्मा ?

सुनकर इन्द्रभूति विचारमग्न हो गये–'ठीक ही तो कहते हैं प्रभु महावीर। मैं और मेरेपन का अनुभव करना ही तो मेरी आत्मा की पहचान है। मेरा यह संशय ही आत्मा को शरीर से भिन्न सिद्ध करता है।' इन्द्रभूति तुरन्त आगे बढ़े और प्रभु महावीर के चरणों में नतमस्तक हो गये–''प्रभो ! आपका कथन सत्य है। मेरे मन का सन्देह दूर हो गया। मेरा भ्रम टूट गया। मैंने सत्य को पा लिया है। अब मैं आजीवन आपके चरणों की शरण पाना चाहता हूँ। कृपया मुझे श्रमण-दीक्षा प्रदान कर कृतार्थ कीजिये।''

''हे गौतम ! तुम्हें जैसा श्रेयस्कर लगे वैसा ही करो।''

ग्यारह गणधर की दीक्षा

फिर इन्द्रभूति ने अपने साथ आये ५०० शिष्यों से कहा–''आयुष्मानों ! मुझे आज सच्चे गुरु की प्राप्ति हो गई है। मैं अब श्रमण भगवान महावीर से दीक्षा ग्रहण कर आजीवन इनके चरणों में रहना चाहता हूँ। अतः आप लोगों को अपनी इच्छानुसार जो उचित लगे करें। सभी शिष्यों ने एक स्वर में कहा–''हम लोग भी आपके साथ दीक्षा लेंगे और आपकी और प्रभु की सेवा करते हुये आत्म-हित करेंगे।''

प्रवचन सभा में बैठे लोगों में से एक व्यक्ति ने तत्काल ही सोमिल विप्र की यज्ञशाला में पहुँचकर इन्द्रभूति के लघु भ्राता अग्निभूति को यह समाचार दिया।

अग्निभूति–''लगता है यह श्रमण कोई मायावी विद्या जानता है। मेरे बन्धु को जाल में फँसा लिया है। मैं अभी उसे मुक्त कराकर लाता हूँ।''

अग्निभूति भी अपने ५०० शिष्यों सहित भगवान के समवसरण में आये और भगवान का परम तात्त्विक उपदेश सुनकर मन की शंका का समाधान पाया और वहीं श्रमण-दीक्षा ग्रहण कर भगवान के समक्ष बैठ गये। इसके पश्चात् क्रमशः

Scanned by CamScanner

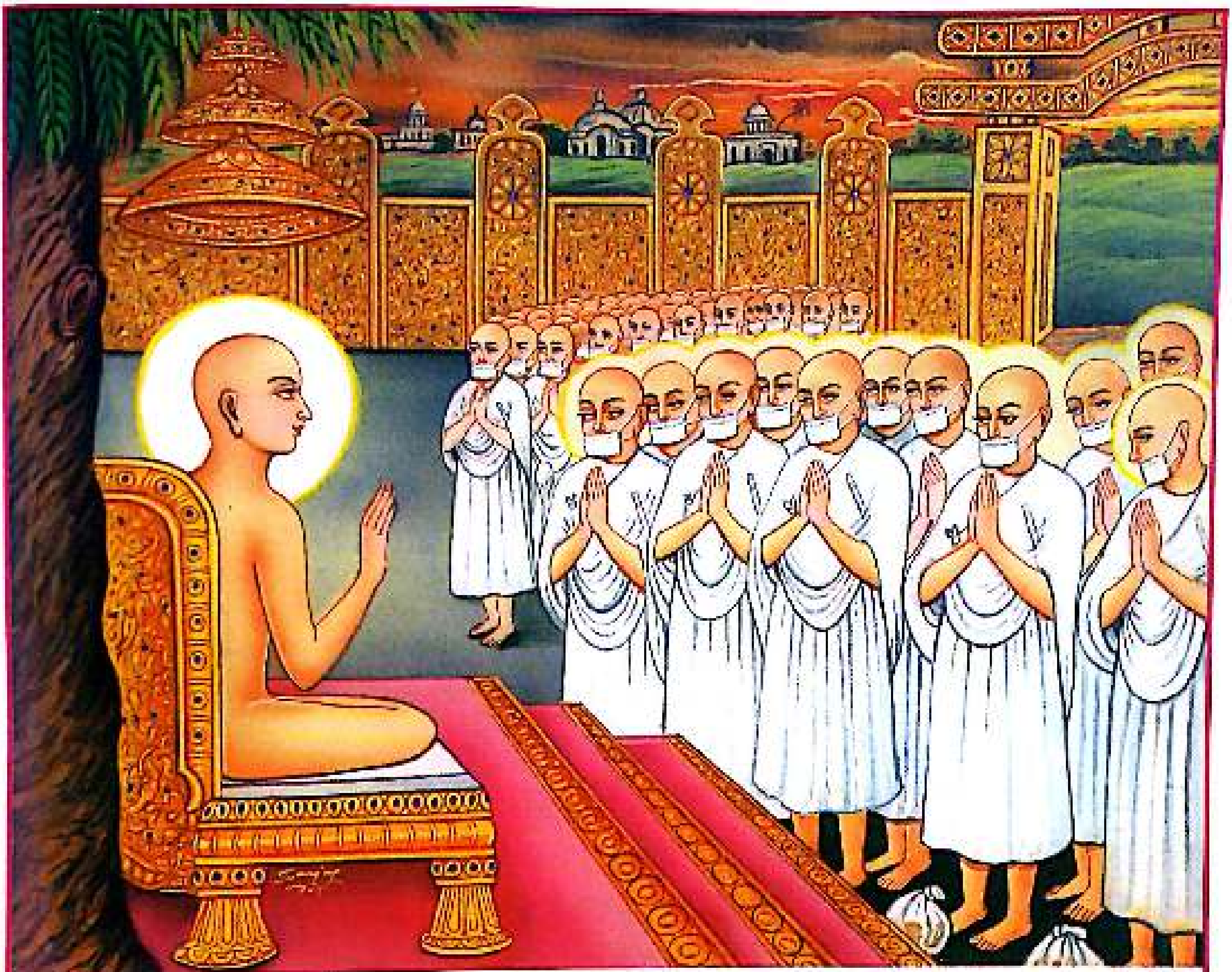

वायुभूति, आर्यव्यक्त, आर्य सुधर्मा प्रत्येक अपने पाँच-पाँच सौ शिष्यों के साथ मण्डित तथा मौर्यपुत्र अपने साढ़े तीन-तीन सौ शिष्यों और अकम्पित, अचलभ्राता, मैतार्य एवं आर्य प्रभास अपने तीन-तीन सौ शिष्यों के साथ श्रमण भगवान महावीर के समवसरण में आये और अपने मनोगत संशयों का भगवान महावीर द्वारा पूर्णरूपेण समाधान पाकर अपने-अपने शिष्य-मण्डल सहित श्रमण भगवान महावीर के पास मुंडित होकर विधिवत् निर्ग्रन्थ बन गये। गणधरों की दीक्षा के समय देवगणों ने पंच-दिव्यों की वर्षा कर अपनी प्रसन्नता एवं धर्म की महिमा प्रकट की।

फिर भगवान ने इन्द्रभूति सहित अपने ग्यारह गणधरों को उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य इस त्रिपदी का विस्तारपूर्वक उपदेश देकर संसार के समस्त तत्त्वों के उत्पन्न, नष्ट एवं स्थिर रहने के स्वभाव का सम्यक् रूप से ज्ञान करवाया। उपदेश सुनकर सभी गणधरों ने विनयपूर्वक सिर झुकाकर कहा—"भन्ते ! हमें तत्त्वस्वरूप का ज्ञान मिल गया। आपका कथन सत्य है।"

Scanned by CamScanner

दीक्षा के पश्चात् इन्द्रभूति गौतम प्रतिदिन स्वाध्याय करते, भिक्षा के लिये जाते, कभी शिष्यों को ज्ञान देते, कभी चिन्तन-मनन में लीन रहते। प्रथम प्रहर में भगवान महावीर की देशना होती उसके पश्चात् पाद पीठ पर बैठकर वे प्रवचन करते। कभी उनके मन में कोई जिज्ञासा उत्पन्न होती तो नम्रतापूर्वक भगवान से उसका समाधान पूछते। भगवान से समाधान पाकर गौतम की जिज्ञासा शान्त हो जाती।

आनन्द श्रावक का अवधिज्ञान

एक बार गणधर गौतम आनन्द श्रावक को संथारे में दर्शन देने उनकी पौषधशाला पहुँचे। आनन्द गाथापति ने उनको वन्दन-नमन किया। इन्द्रभूति गौतम ने पूछा—''आनन्द, मैंने सुना है तुम्हें अवधिज्ञान प्राप्त हुआ है।''

गाथापति आनन्द ने कहा—''हाँ, भन्ते ! यह सत्य है, मैं इस अवधिज्ञान से पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण दिशाओं में पाँच-पाँच सौ योजन तक का क्षेत्र देख रहा हूँ। ऊर्ध्वदिशा (पृथ्वी से ऊपर की तरफ) में सौधर्मकल्प तथा अधोदिशा (पृथ्वी से नीचे की तरफ) में प्रथम नरक भूमि तक का क्षेत्र देख रहा हूँ।''

गौतम ने कहा—''आनन्द ! गृहस्थ साधक को इतना विशाल अवधिज्ञान प्राप्त नहीं होता.......तुम्हारा कथन भ्रांतिपूर्ण है। इसका प्रायश्चित्त करो।''

आनन्द ने कहा—''भन्ते ! क्या सत्य कथन करने पर भी प्रायिश्चत्त लेना पड़ता है।''

गौतम बोले—''नहीं !''

फिर आनन्द ने कहा—''तो भगवन् ! मैं सत्य भाषण कर रहा हूँ, आप ही इसका प्रायश्चित्त करें।''

गौतम असमंजस में पड़ गये—'क्या सचमुच मैं भ्रांति में हूँ।'

गौतम का मन शंकित हो उठा। वे तुरन्त श्रमण महावीर के पास आये। वन्दन कर सारा वृत्तांत सुनाया और पूछा—''भन्ते ! इस प्रसंग में किसकी भूल है ? किसको प्राश्यचित्त करना चाहिए ?''

भगवान ने फरमाया—''गौतम ! आनन्द गाथापति का कथन ही सत्य है। तुम अपने असत्य कथन के लिये उससे क्षमायाचना करो।''गौतम तत्काल आनन्द गाथापति की पौषधशाला वापस आये और क्षमायाचना की—''आनन्द ! मेरे कथन से तुम्हें दुःख हुआ, मुझे क्षमा करें। मैं अपनी भूल स्वीकार करता हूँ।''

Scanned by CamScanner

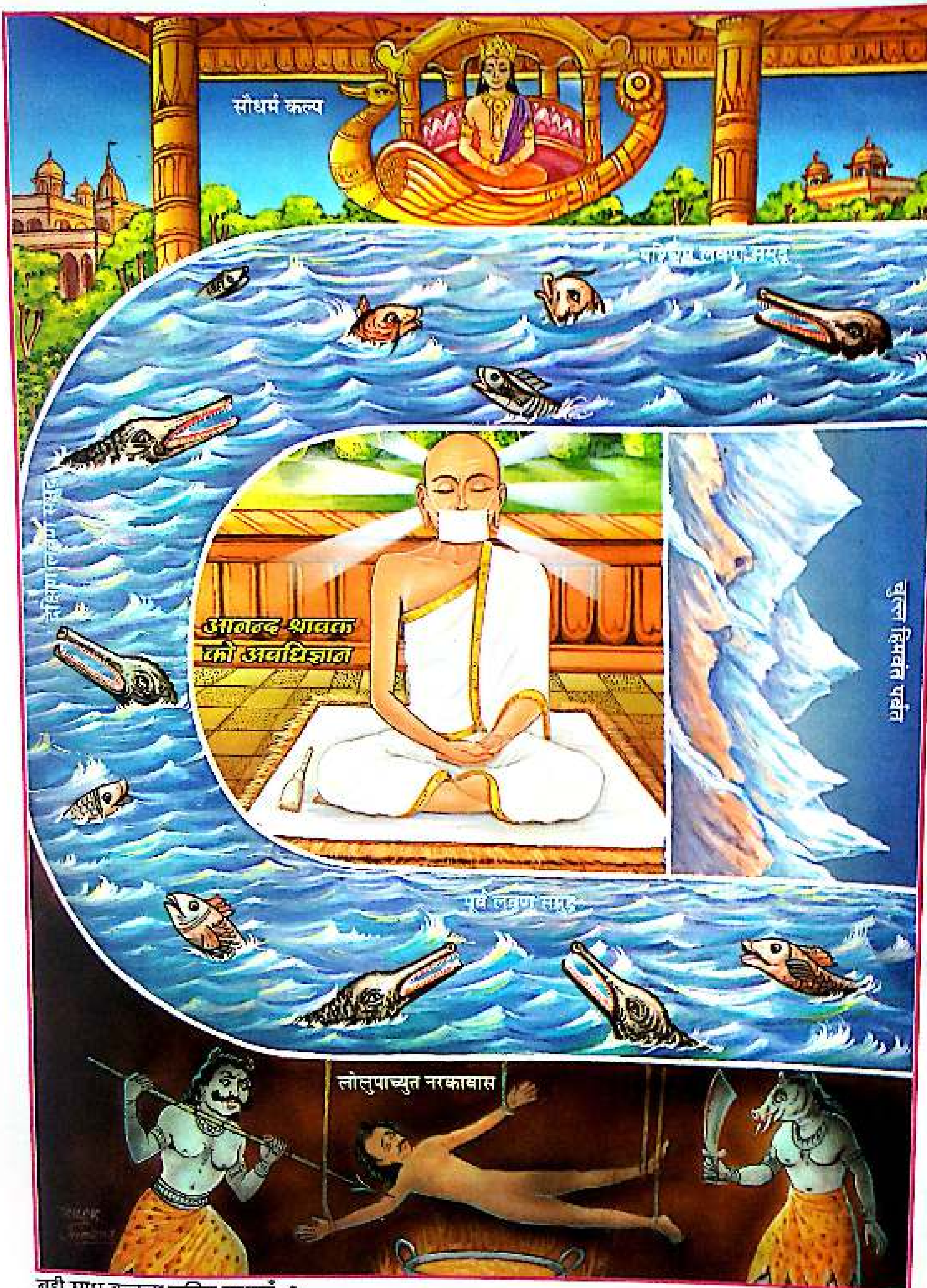

Scanned by CamScanner

इस तरह सरलमना इन्द्रभूति गौतम भूल स्वीकारने में जरा-सा भी प्रमाद और विलम्ब नहीं करते थे। इन्द्रभूति गौतम चौदह पूर्वधारी और चार ज्ञान के धारक थे। शरीर से ममतारहित थे। तप की साधना के फलस्वरूप उन्हें तेजोलेश्या प्राप्त थी। वे अतिशय ज्ञानी होते हुए भी परम गुरुभक्त और आदर्श शिष्य थे। भगवान के प्रति उनका विशेष अनुराग था। यही अनुराग उनके केवलज्ञान प्राप्त करने में बाधक था। अपनी धर्मयात्रा के अन्तिम पड़ाव में भगवान ने पावापुरी में चातुर्मास किया। अपने निर्वाण से एक दिन पहले भगवान ने गौतम को पास के गाँव में देवशर्मा नामक ब्राह्मण को प्रतिबोध देने भेज दिया।

भगवान की आज्ञानुसार देवशर्मा ब्राह्मण को प्रतिबोध देकर वे वापस आ रहे थे, तभी देव-विमानों के कोलाहल सुनकर ज्ञानोपयोग से इन्द्रभूति गौतम को भगवान महावीर के निर्वाण होने का पता चला। शोक संतप्त होकर वे बालक की तरह विलाप करने लगे—"हे प्रभु ! मुझे छोड़कर चले गये। अब मेरा क्या होगा ? 'गौतम, गौतम' कहकर कौन मेरे मन की शंकाओं का निराकरण करेगा ?"

काफी समय तक विषादावस्था में रहने के बाद रात्रि के पश्चात् सूर्योदय की तरह उनके अन्तःस्थल में भी प्रकाश जगमगा उठा। उन्होंने सोचा—'प्रभु तो वीतराग थे। उन्होंने मुझे कितनी ही बार समझाया कि यही मोह मेरी मुक्ति में बाधक है। मोह छोड़ दे। उनके प्रति रागभाव छोड़ने के लिये बार-बार मुझे सावधान किया।' चिन्तन करते-करते गौतम का ध्यान स्नेह दशा से निकलकर वीतराग की ओर मुड़ गया। वे उत्कट चिन्तन से ध्यान की उच्चतम् सीढ़ी पर पहुँचे और उन्हें केवलज्ञान, केवलदर्शन की उपलब्धि हो गई।

भगवान महावीर के निर्वाण के कारण मन में उठा विषाद ही उनके केवलज्ञान प्राप्त करने में सहायक हुआ। कार्तिक शुक्ला एकम् को भगवान के निर्वाण उत्सव के पश्चात् इन्द्रभूति गौतम का केवलज्ञान-प्राप्ति महोत्सव मनाया गया। गणधर गौतम ने १२ वर्ष तक केवली-पर्याय में विचरण कर हजारों लोगों को धर्म उपदेश दिया। ६२ वर्ष की अवस्था में अपना अन्त निकट जानकर वे गुणशील चैत्य में एक सफेद शिलापट्ट पर समाधिलीन हो गये। आज भी हजारों लोग भक्तिपूर्वक उनका नाम स्मरण करके गाते हैं—

अंगुष्ठे अमृत बसे, लब्धि तणा भण्डार।
श्री गुरु गौतम सुमरिये, वांछित फल दातार।।

Scanned by CamScanner

श्री जयमल जैन पार्श्व पद्मोदय फाउण्डेशन चेन्नई के ट्रस्टीगण

वंश परम्परागत ट्रस्टी :

अध्यक्ष : श्री ज्ञानचन्द जी मुणोत, चेन्नई
उपाध्यक्ष : श्री भंवरलाल जी लोढ़ा, चेन्नई
उपाध्यक्ष : श्री ए. एन. प्रकाशचन्द जी बोहरा, चेन्नई
कोषाध्यक्ष : श्री नरेन्द्रकुमार जी मरलेचा, चेन्नई
मंत्री : श्री नवरतनमल जी गादिया, चेन्नई

आजीवन ट्रस्टी

- श्री चेनराज जी गोटावत, बैंगलोर
- श्री धनराज जी बाफणा, बैंगलोर
- श्री धरमचंद जी लूंकड, चेन्नई
- श्री उत्तमचन्द जी बोलड़िया, चेन्नई
- श्री शान्तिलाल जी नेहरा, चेन्नई
- श्री विजयसिंह जी पीचा, चेन्नई
- श्री ललेशकुमार जी कांकरिया, चेन्नई
- श्री गौतमचन्द जी रूणवाल, चेन्नई
- श्री विमलचन्द जी बैताला, चेन्नई
- श्री उत्तमचंद जी बागमार, इरोड
- श्री निर्मलचंद जी कांकरिया, जोधपुर
- श्री महावीरराज जी बोहरा, पिपलीयां कलां
- श्री रमेशकुमार जी सियाल, बैंगलोर
- श्री विजयराज जी छाजेड़, सिकन्द्राबाद
- श्री एस. गौतमचन्द जी श्रीश्रीमाल, सिकन्द्राबाद
- श्री सज्जनराज जी कांकरिया, सिकन्द्राबाद
- श्री शान्तिलाल जी कोठारी, हैदराबाद
- श्री बाबूलाल जी कांकरिया, हैदराबाद
- श्री उगमराज जी भंसाली, हैदराबाद

卐 चमत्कारी जय जाप 卐

पूज्य जयमल जी हुआ अवतारी, ज्यांरा नाम तणी महिमा भारी।
कष्ट टले मिटे ताव तपो, पूज्य जयमल जी रो जाप जपो।।
पूज्य नामे सब कष्ट टले, वली भूत-प्रेत पिण नाय छलें।
मिले न चोर हुवे गुप-चुपो, पूज्य जयमल जी रो जाप जपो।।
लक्ष्मी दिन-दिन बढ़ जावे, वली दुःख नेड़ो तो नहीं आवे।
व्यापार में होवे बहुत नफो, पूज्य जयमल जी रो जाप जपो।।
अड़ियो काम तो होय जावे, वली बिगड्यो काम भी बण जावे।।
भूल-चूक नहीं खाय डफो, पूज्य जयमल जी रो जाप जपो।।
राज-काज में तेज रहे, वली खमा-खमा सब लोक कहे।
आछी जागा जाय रूपो, पूज्य जयमल जी रो जाप जपो।।
पूज्य नाम तणो जो लियो ओटो, ज्यारे कदे नहीं आवे टोटो।
घर-घर बारणे काय तपो, पूज्य जयमल जी रो जाप जपो।।
एक माला नित्त नेम रखो, किणी बात तणो नहिं होय धखो।
खाली विमाण अरु टलेजी सपो, पूज्य जयमल जी रो जाप जपो।।
स्वभक्त तणी प्रतिपाल करे, मुनिराम सदा तुम ध्यान धरे।
कोई परतिख बात मती उथपो, पूज्य जयमल जी रो जाप जपो।।
पूज्य नाम प्रताप इसो जबरो, दुख कष्ट-रोग जावे सगरो।
केई भवां रा कर्म खपो, पूज्य जयमल जी रो जाप जपो।।

नोट—इस चमत्कारी जय जाप को नित्य पढ़ने से सम्यक्त्व सुदृढ़ बनता है।

पुस्तक प्राप्ति स्थान :

श्री जयमल जैन पार्श्व पद्मोदय फाउण्डेशन, चेन्नई
78, Millers Road, Kilpauk, Chennai-600 010
Ph. : 26422308, 26422309

श्री जय ध्वज प्रकाशन समिति (शाखा-कार्यालय)
श्रुताचार्य चौथ स्मृति भवन, 39, विनोद नगर, ब्यावर (राज.)

श्री जयमल जैन पार्श्व-पद्मोदय माउण्ट आबू शिविर ट्रस्ट
C/o, श्री चैनराज जी गोटावत, एम. सी. गोटावत इलेक्ट्रीकल्स,
वी. एस. लेन, चिकपेट, बैंगलोर-560 053. फोन : 26571898, 26577455

Scanned by CamScanner

स्वाध्याय–ध्यान प्रणेता, डॉ. पदमचन्द्र जी म. सा. के प्रवचन एवं संपादित पुस्तकें

सचित्र बड़ी साधु वन्दना भाग– 1 – 5

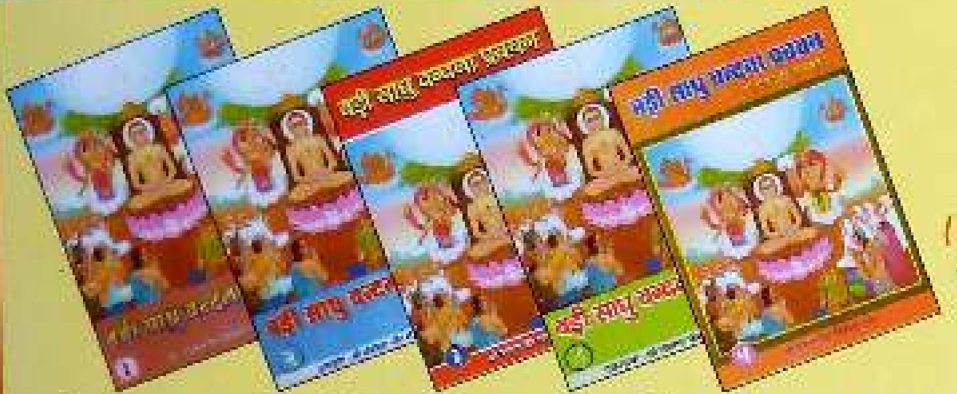

आचार्य श्री जयमल जी म. की अमर रचना बड़ी साधु वन्दना की एक–एक कड़ी पर विस्तृत विवेचन करने वाले प्रवचन।
(प्रवचनकार : डा. पदमचन्द्र जी म. सा.)
रंगीन चित्रों द्वारा प्रत्येक गाथा का सजीव चित्रण किया गया है।

प्रत्येक भाग पक्की बाइंडिंग युक्त 400 पृष्ठों का है । प्रत्येक भाग का मूल्य : 350/– है
पाँचों भागों को एक साथ मंगाने पर मूल्य : 1250/–

जय ध्वज

एक भवावतारी आचार्य श्री जयमल जी म. सा. का सम्पूर्ण जीवन चरित्र पाँच भागों में प्रकाशन की योजना एक भाग प्रकाशित हो चुका है। दूसरा भाग प्रेस में है।
प्रत्येक भाग का मूल्य : 350/– है

बड़ी साधु वन्दना सचित्र कथाऐं

बड़ी साधु वन्दना में दिये गये ऐतिहासिक चरित्रों के जीवन पर रंगीन सचित्र कथायें। कुल 108 भाग प्रकाशन की योजना
प्रत्येक भाग का मूल्य : 25/– है।

एक भवावतारी आचार्य श्री जयमल जी म. सा. का संक्षिप्त जीवन चरित्र एवं स्वाध्याय हेतु नमोकार मंत्र, जयजाप, पच्चीस बोल स्तोक संग्रह इत्यादि प्रकाशित साहित्य

पुस्तकें मंगाने के लिऐ निम्न पते पर अपना आर्डर भेजें।

श्री जयमल जैन पार्श्व-पद्मोदय फाउण्डेशन, चेन्नई

78, MILLERS ROAD, KILPAUK, CHENNAI - 600 010. CELL : 94441 43907, 9841047607

Scanned by CamScanner